श्री त्रिपुरा महोपनिषत्

(हिन्दी टीका व व्याख्या सहित)

श्री त्रिपुरा महोपनिषत्

(हिन्दी टीका व व्याख्या-सहित)

सम्पादक

'कुल-भूषण' पं० रमादत्त शुक्ल, एम० ए०

प्रकाशक

कल्याण मन्दिर प्रकाशन

अलोपीबाग मार्ग, प्रयाग—२११००६

[द्वितीय संस्करण]   माघ पूर्णिमा संवत् २०४२

प्रकाशक

कल्याण मन्दिर प्रकाशन

अलोपीबाग मार्ग, प्रयाग—२११००६

अ नु क्र म

मुद्रक :

परा-वाणी प्रेस

अलोपीबाग मार्ग

प्रयाग—२११००६

प्राक्कथन

'त्रिपुरा महोपनिषत्' अथर्व-वेद के सौभाग्य-काण्ड से सम्ब-न्धित है। इस उपनिषत् का अध्ययन करने से आगम के सिद्धान्तों और तदनुसार प्रचलित साधना-क्रम को हृदयङ्गम करने में विशेष सरलता अनुभव होती है। भगवती त्रिपुर-सुन्दरी के उपासकों के लिए तो यह अनिवार्य पाठ्य श्रुति है ही, किन्तु अन्य देवतोपासकों के लिए भी यह एक अत्यन्त उपयोगी ज्ञान-वर्द्धक उपनिषत् है। यही कारण है कि इसे हिन्दी अनुवाद व भाष्य-सहित एक स्वतन्त्र पुस्तक-रूप में प्रकाशित किया जा रहा है।

यहाँ एक महत्त्व की बात उल्लेखनीय है। वह यह कि तन्त्र-शास्त्रोक्त शाक्त-साधना का वेदों से और विशेषकर अथर्व-वेद से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। यह तथ्य प्रस्तुत 'त्रिपुरा महोपनिषत्' तथा इस जैसे अन्य अनेक उपनिषदों के अध्ययन से भले प्रकार प्रतिपादित हो जाता है। इन उपनिषदों के पढ़ने से ज्ञात होता है कि तन्त्र-शास्त्र में साधना-विषयक मन्त्र, यन्त्र, चक्र आदि जो तत्व बताए गए हैं, उनका उल्लेख अथर्व-वेद और ऋग्वेद में तो प्रमुख रूप से पाया ही जाता है, यजुर्वेद भी इन तत्वों की चर्चा मिलती है।

इस सम्बन्ध में यहाँ एक भ्रम का निराकरण करना आव-श्यक है। बहुत से लोग अथर्व-वेद को प्रामाणिक नहीं मानते। वे कहते हैं कि 'मूल वेद तो तीन ही हैं—ऋक्, यजु और साम। इसी से वेदों का एक नाम 'त्रयी विद्या' भी है। रहा अथर्व-वेद,

तो वह बाद की रचना है। अतः उक्त तीन वेदों के समान प्रामाणिक नहीं है।' किन्तु यह कथन ठीक नहीं है।

'त्रयी विद्या' का वास्तव में यह अर्थ नहीं है कि वेद तीन हैं। अपितु यहाँ 'त्रयी विद्या' से कर्म, उपासना और ज्ञान—इन तीन काण्डों से तात्पर्य है। इस प्रकार 'त्रयी विद्या' का अर्थ तीन वेद करना सर्वथा अशुद्ध व भ्रामक है। फिर 'वेद' शब्द ही 'चार' का बोधक है। उदाहरणार्थ ब्रह्मा को 'वेद-बाहु' कहा कहा है अर्थात् उनके चार भुजाएँ हैं। इसी प्रकार ब्राह्मणों में एक आस्पद है 'चतुर्वेदी', जिसका अर्थ है चार वेदों का जानने-वाला। अतएव वेद को मूलतः त्रि-संख्यक बताना बिलकुल निराधार है। वेद वस्तुतः और मूलतः चार ही हैं। वे हैं—१ ऋग्वेद, २ यजुर्वेद, ३ साम-वेद और ४ अथर्व-वेद।

केवल अथर्व-वेद में ही साधना के कर्म-काण्ड का निर्देश नहीं है। अन्य वेदों में भी कर्म-काण्ड की व्यवस्था यथा-स्थान मिलती है। 'अथर्वण' के नाम का उल्लेख भी अन्य तीनों वेदों में हुआ है। अध्वर्यु, होता, उद्गाता और ब्रह्मा—चार प्रकार के ये पुरोहित भी लोक - विश्रुत हैं। इनमें से अन्तिम अर्थात् ब्रह्मा पर अन्य ऋत्विकों के कार्य के निरीक्षण का दायित्व रहता है।

कहते हैं कि अथर्व-वेद का नाम-करण एक ऐसे ही महान् ब्रह्मा के नाम पर हुआ है, जो अङ्गिरा की कुल-परम्परा के माने जाते हैं। मुण्डकोपनिषत् में कहा है कि 'ब्रह्मा ने अपने प्रथम पुत्र अथर्व को उस ब्रह्म - विद्या का उपदेश किया, जो सभी विद्याओं का कोष है और अथर्व ने उसका उपदेश अङ्गिरा को किया।'

एक सनातन-धर्मी के दृष्टि-कोण से किसी एक वेद या उपनिषत् को अन्य वेदों या उपनिषदों से अधिक महत्व देना या अधिक प्रामाणिक मानना अनुचित है। सूत-संहिता कहती है कि 'वेद एक है और उसका लक्ष्य भी एक ही है किन्तु यह विभिन्न शाखाओं में विभक्त है।' इसी से वेद अनन्त कहे गए हैं—'अनन्ता वै वेदाः।' अतएव अथर्व-वेद उतना ही पूज्य और माननीय है, जितने कि अन्य तीन वेद क्योंकि ये चारों ही वास्तव में एक ही हैं। ऐसे ही अथर्व-वेद के सौभाग्य-काण्ड से सम्बन्धित यह 'त्रिपुरा महोपनिषत्' भी विज्ञ साधकों को अत्यन्त सम्मान्य रहा है।

प्रस्तुत 'त्रिपुरा महोपनिषत्' के महत्त्व को हृदयङ्गम कर उद्भट विद्वान् और सिद्ध कौल साधक तथा भगवता श्री के अनन्योपासक भास्कर राय ने इसकी व्याख्या करने का स्तुत्य कार्य किया। उनकी उसी व्याख्या के आधार पर इस पुस्तक की हिन्दी टीका तैयार की गई है। अतएव यहाँ पर विद्वद्-वर्य भास्कर राय का संक्षेप में परिचय देना उचित होगा।

'भास्कर राय का आविर्भाव १७वीं शती के अन्तिम चतुर्थांश में हुआ माना जाता है और १८ वीं शती के द्वितीयार्ध तक वे जीवित रहे, ऐसा विद्वानों का अनुमान है। उनके सम्बन्ध में यह कथा प्रचलित है कि 'भास्कर राय सब विद्याओं के ज्ञाता थे और शाक्त-धर्म के वामाचार के कट्टर अनुयायी थे। उन दिनों वे काशी में निवास करते थे। वहाँ का पण्डित-वर्ग उनसे प्रसन्न नहीं था।

'अन्ततोगत्वा काशी के प्रायः सब पण्डितों ने प्रसिद्ध ग्रन्थ-कार नारायण भट्ट के नेतृत्व में यह निश्चय किया कि भास्कर

राय को शास्त्रार्थ द्वारा यह मानने को बाध्य किया जाय कि उन्होंने पूजन की वाम-मार्गीय पद्धति को अपना कर भारी भूल की है। भास्कर राय को जैसे ही यह बात मालूम हुई, उन्होंने स्वयं उक्त पण्डितों को अपने यहाँ आयोजित एक महा-याग में इस उद्देश्य से आमन्त्रित किया कि शास्त्रार्थ द्वारा सदा के लिये यह निर्णय कर लिया जाय कि वाम-मार्ग के प्रति उनकी निष्ठा ठीक है या पण्डितों की उक्त धारणा।

'नारायण भट्ट और उनके अनुयायियों ने आमन्त्रण स्वीकार कर लिया और निर्दिष्ट समय पर वे याग-शाला में पहुँच गये, जहाँ भास्करराय ने बड़े आदर के साथ उनका स्वागत किया। महा-याग की भव्य व्यवस्था और भास्करराय की आध्यात्मिक महत्ता से सारा पण्डित-वर्ग प्रभावित हो उठा और शास्त्रार्थ की उनकी उग्र प्रवृत्ति कुंठित हो गई। फिर भी, उन्होंने मन्त्र-शास्त्र-सम्बन्धी कुछ जटिल प्रश्नों को उठाया, जिनका समाधान भास्करराय ने तुरन्त ही कर दिया।

'इसी समय एक विद्वान् संन्यासी कुंकुमानन्द सरस्वती ने पण्डितों को सम्बोधित करते हुए यह कहा कि 'भास्करराय को हत-प्रभ करने का आपका सारा प्रयास व्यर्थ जायगा क्योंकि साक्षात् श्री देवी ही उनकी वाणी के द्वारा बोल रही हैं।' किन्तु नारायण भट्ट को इस कथन पर विश्वास नहीं हुआ। उन्होने प्रत्यक्ष प्रमाण की माँग की। तुरन्त ही उस संन्यासी ने याग-स्थल-स्थित उस पात्र का कुछ जल हाथ में लिया, जिससे भास्करराय ने श्री देवी को स्नान कराया था, और उससे नारायण भट्ट की आँखों को अभिषिक्त कर दिया। क्षण ही भर में नारायण भट्ट को दिव्य दृष्टि प्राप्त हो गई और उन्होने

भास्कर राय के कंधों पर विराजमान तथा उनके मुख से बोलती हुई श्री देवी के अनूठे दर्शनों को प्राप्त किया। फलतः जो नारायण भट्ट भास्करराय को शास्त्रार्थ में परास्त करने आए थे, उन्हें उनका प्रशंसक होकर लौटना पड़ा।'

इस कथा में अतिशयोक्ति हो सकती है किन्तु इससे इतना तो विदित ही हो जाता है कि भास्करराय एक महान् कौल साधक थे और उनकी महत्ता को सम-कालीन पण्डितों ने भी स्वीकार कर लिया था।

भास्कर राय के एक शिष्य जगन्नाथ को 'भास्कर-विलास' नामक कृति से उनके जीवन के सम्बन्ध में विशेष जानकारी प्राप्त होती है। यही जगन्नाथ बाद में अपने दीक्षा-नाम उमा-नन्दनाथ नाम से प्रसिद्ध हुए। 'भास्कर-विलास' के अनुसार भास्करराय की जीवन-कथा निम्न प्रकार है--

बहुत समय हुए, गम्भीर राय नाम के एक विद्वान् ब्राह्मण थे, जिनका गोत्र विश्वामित्र था। वे सर्व-गुण-सम्पन्न तो थे ही, सम्पत्ति-शाली भी थे। विजय-नगर राज्य के तत्कालीन शासक उनकी प्रतिभा से आकृष्ट हुये और उन्हें अपने यहाँ महा-भारत' की व्याख्या करने के लिये नियुक्त किया। गम्भीर राय की अनुपम विद्वत्ता से उक्त शासक इतना प्रसन्न हुआ कि उसने उन्हें 'भारती' की उपाधि से विभूषित किया।

गम्भीर राय की पत्नी का नाम था कोणमाम्बा। इन्हीं के यहाँ भाग नामक ग्राम में भास्कर राय का जन्म हुआ। भास्कर का उपनयन-संस्कार उनके पिता ने काशी में सम्पन्न किया और उन्हें नरसिंहाध्वरिन के पास अध्ययन हेतु रखा गया। इनसे भास्कर ने अठारहों विद्याओं की शिक्षा प्राप्त की और यह

सब पढ़ने में इन्हें विशेष समय भी नहीं लगा क्योंकि एक तो ये जन्मना अत्यन्त मेधावी थे और दूसरे जब ये वहुत छोटे थे, तभी इनके पिता ने इन्हें भगवती सरस्वती की उपासना में लगा दिया था। यही कारण था कि जब भास्कर केवल सात वर्ष के एक बालक थे, तभी वे स्तुति-पाठ अत्यन्त कुशलतापूर्वक करने लगे थे।

गङ्गाधर वाजपेयिन् से गौड़-तर्क की शिक्षा पूर्णतया प्राप्त कर चुकने पर भास्कर का विवाह आनन्दी के साथ कर दिया गया। भास्कर राय का ध्यान अथर्व-वेद की ओर आकृष्ट हुआ और उन्होंने बड़े परिश्रम के साथ इसके अध्ययन-अध्यापन का कठिन कार्य प्रारम्भ किया। 'देवी-भागवत महा-पुराण' और रामायण के आठवें 'अद्भुत काण्ड' को लोक-प्रिय बनाने का श्रेय वस्तुतः भास्कर राय को ही है।

भास्कर राय ने अपनी धर्म-पत्नी को भगवती श्रीविद्या की दीक्षा दी और उनका नाम 'पद्मावती अम्बिका' रखा। स्वयं भास्कर राय ने शिवदत्त सुकुल से अपना पूर्णाभिषेक कराया। इसके वाद उन्होंने गुजरात का भ्रमण किया और वहाँ वल्लभ सम्प्रदाय के एक आचार्य को शास्त्रार्थ में परास्त किया। माध्य सम्प्रदाय के एक संन्यासी ने उन्हें दार्शनिक शास्त्रार्थ के लिये आहूत किया। इस शास्त्रार्थ में भी भास्कर राय विजयी हुए और फल-स्वरूप अपने विरोधी से सम्बन्धित पार्वती नामक एक कन्या से उन्होंने विवाह किया।

भास्कर राय कुछ समय तक काशी में भी रहे। वहाँ उन्होंने सोम-याग का एक भव्य आयोजन किया था। बाद में अपने एक शिष्य चन्द्रसेन के आग्रह पर वे कृष्णा नदी के तट-वर्ती

प्रदेश में जाकर निवास करने लगे। फिर कुछ समय के बाद वे कोल देश में चले गये, जहाँ कावेरी के दक्षिणी तट-वर्ती तिरुवालन काडु नामक ग्राम में उनके न्याय-शास्त्र के शिक्षक गङ्गाधर वाजपेयिन् निवास करते थे। अपने पुराने गुरु के निकट रहने के उद्देश्य से भास्कर राय ने अपने स्थायी निवास के लिए भास्कर-राज-पुरम् नामक ग्राम को चुना। यह ग्राम उन्हें तजौर के तत्कालीन मराठा शासक ने प्रदान किया था और यह उक्त तिरुवालन काडु ग्राम के ठीक सामने कावेरी के उत्तरी तट पर स्थित था। श्री भास्कर राय ने दीर्घायु पाई और प्रसिद्ध मध्यार्जुन क्षेत्र (आधुनिक नाम—तिरु-विद्दैमरुदूर, दक्षिण रेलवे) में उनका देहान्त हुआ।

भास्कर राय और उनकी पत्नी ने अनेक देव-मन्दिरों का निर्माण व अनेक का जीर्णोद्धार किया। काशी में चक्रेश मन्दिर उन्हीं का बनवाया है। मूल-ह्रद में पाण्डुरङ्ग के नाम से एक और कोंकण देश में गम्भीरनाथ के हेतु अनेक मन्दिर निर्मित कराये। रामेश्वर में वज्रेश्वर मन्दिर और सन्नति नामक स्थान में उन्होंने अपनी कुल-देवता चन्द्रलाम्बा का मन्दिर श्री-चक्र के रूप का बनवाया। कोल देश के कहलेश मन्दिर में दैनिक, मासिक और वार्षिक पूजन-समारोहों का सूत्र-पात भी उन्होंने किया। उनकी प्रथम पत्नी ने कावेरी-तटवर्ती भास्कर-पुर से भास्करेश्वर मन्दिर के चारों ओर चार-दीवारी बनवा-कर उसका पुनर्निर्माण कराया।

भास्कर राय की महत्ता और दैवी शक्ति के सम्बन्ध में अनेक किंवदन्तियाँ प्रसिद्ध हैं। एक ऐसी ही किंवदन्ती का वर्णन यहाँ किया जाता है। जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, भास्कर राय ने अपने जीवन का अन्तिम समय मध्यार्जुन-

क्षेत्र में व्यतीत किया था। सायं-काल के समय वे अपने घर की बाहरी चौपार में आराम से बैठा करते थे और शिष्यों को उपदेश किया करते थे। एक संन्यासी महोदय उधर से प्रतिदिन सायं-काल निकला करते थे किन्तु भास्कर राय उनकी ओर कोई ध्यान नहीं देते थे। संन्यासी को देखकर नियमानुसार न तो वे आसन से खड़े होते थे, न अभिवादन करते थे। इससे उक्त संन्यासी महोदय को बड़ा क्षोभ हुआ और एक दिन प्रदोष के अवसर पर, जब कि श्री महालिङ्ग स्वामी के मन्दिर में भारी जन-समूह एकत्र था और श्री भास्कर राय भी वहाँ वर्तमान थे, सबके समक्ष उन्होने अपने प्रति की गई उपेक्षा का प्रतिकार कराने का प्रयत्न किया। उन्होंने उच्च स्वर में भास्कर राय का वहाँ यह कहकर प्रत्याख्यान किया कि 'आप सदाचार का पालन नहीं करते। एक गृहस्थ को संन्यासी के प्रति जिस प्रकार का व्यवहार करना आवश्यक है, उसकी आप अवहेलना करते रहे हैं। अतः आप पाप के भागी हैं।'

भास्कर राय ने विनम्रतापूर्वक उत्तर दिया कि 'मेरा वैसा व्यवहार संन्यासी के प्रति उपेक्षा के भाव से नहीं है। यदि आप मेरे इस कथन की सच्चाई की परीक्षा करना चाहते हैं, तो अपना दण्ड और कमण्डलु सामने रखिए। मैं उसे अभी दण्ड-वत् प्रणाम करूँगा और आपको विदित हो जायगा कि क्यों मैं आपको अभिवादन नहीं किया करता था।'

संन्यासी महोदय ने इस पर अपना दण्ड और कमण्डलु आगे रख दिया। भास्कर राय ने उनके समक्ष दण्ड-वत् भूमि पर पड़कर उन्हें साष्टाङ्ग प्रणाम किया। तत्क्षण ही उन दोनों के टुकड़े-टुकड़े हो गए। सभी लोग यह चमत्कार देखकर चकित हो गये।

वास्तव में भास्कर राय को षोढा-न्यास सिद्ध था, उसी का यह माहात्म्य था। संन्यासी महोदय को अपनी भूल ज्ञात हो गई और उन्होंने भास्कर राय से कहा कि 'अज्ञता-वश मैंने आपके प्रति जो दुर्वचन कहे हैं, उनके लिये मुझे खेद है। किन्तु मैं आपसे इतना निवेदन अवश्य करूँगा कि यदि आप संन्यासियों का आदर नहीं करेंगे, तो आपकी देखा-देखी दूसरे लोग भी उनकी उपेक्षा करेंगे और इस प्रकार संन्यासाश्रम ही हेय हो जायगा।'

भास्कर राय ने उनके इस कथन की यथार्थता को अनुभव किया और उस दिन से वे जब किसी संन्यासी को आते देखते, तब घर के भीतर चले जाते।

यह तो भाष्यकार का परिचय हुआ। अब संक्षेप में 'त्रिपुरा महोपनिषत्' का परिचय यहाँ दिया जाता है। इस उपनिषत् में कुल १६ ऋचाएँ हैं। आठवीं ऋचा को अथर्व-वेद की शौनक शाखा से और ऋग्वेद को सांखयायन शाखा से सम्बन्धित बताया जाता है। इस ऋचा में पञ्च-दशाक्षर मन्त्र कहा गया है। नवीं ऋचा में हादि-मत के अनुसार पञ्च-दशाक्षर मन्त्र का वाग्भव कूट समाविष्ट है।

प्रथम ऋचा में बिन्दु-चक्र के सम्बन्ध में बताया गया है कि उसमें अ, क, थ (अकथ त्रिकोण) वर्ण अपने सूक्ष्म रूप में विद्यमान हैं। दूसरी ऋचा में एक त्रिकोणात्मक और अष्ट-त्रिकोणात्मक दो चक्रों का वर्णन हुआ है। इस प्रकार प्रारम्भिक पाँच ऋचाओं में भगवती त्रिपुर-सुन्दरी के पूजन-यन्त्र श्रीचक्र का विवरण दिया गया है। छठी ऋचा बताती है कि अन्यत्र वर्णित समस्त देवता वस्तुतः स्वयं भगवती त्रिपुरा के ही स्वरूप हैं।

सातवीं ऋचा कहती है कि उसका ज्ञान होने से साधक भगवती त्रिपुरा का दर्शन प्राप्त करता है।

चौदहवीं ऋचा सृष्टि के स्त्री (शक्ति) और पुरुष (शिव) रूपों की समान महत्ता को व्यक्त करती है। १५वीं ऋचा निर्गुण ध्यान का महत्व और उसके करने की विधि बताती है। इन सभी ऋचाओं की जो व्याख्या भास्कर राय ने की है, उसके मनन करने से साधना की विशेष बातों का उपयोगी ज्ञान प्राप्त होता है।

अन्त में मैं स्वर्गीय पण्डित उमेशचन्द्र मिश्र के प्रति अपनी हार्दिक श्रद्धाञ्जलि अर्पित करता हूं क्योंकि इस उपनिषत् की हिन्दी टीका वस्तुतः उन्हीं की देन है, जो कि सम्वत् १९९९ की 'चण्डी' में छपी थी। मैंने भास्कर-व्याख्या के महत्वपूर्ण अंशों का भावार्थ और इसमें जोड़ दिया है। यदि इससे भगवती त्रिपुरा के उपासकों को इस महत्व-पूर्ण उपनिषत् के अध्ययन में थोड़ी भी सुविधा मिली, तो मैं अपने परिश्रम को सार्थक समझूंगा।

वासन्तीय नवरात्र
सं० २०१५ वि०

—रमादत्त शुक्ल
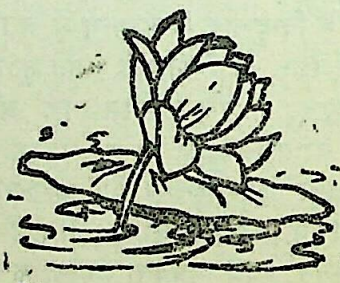
श्रीत्रिपुरा-माहात्म्य

राज-राजेश्वरी श्रीत्रिपुर-सुन्दरी की महिमा 'त्रिपुरा-रहस्य' (ज्ञान-खण्ड) के अन्तर्गत इस प्रकार वर्णित है—

परम पवित्र सत्य-लोक में एक दिन ब्रह्माजी की सभा में ज्ञान-चर्चा चल रही थी। उस सभा में वशिष्ठ, सनकादि, पुलह, अगस्त्य, भृगु, अंगिरा, नारद, वामदेव, विश्वामित्र, गौतम, पराशर, व्यास, कश्यप, शुक्राचार्य आदि अनेक विद्वान् महर्षि एकत्र थे। उन सभी ऋषियों ने ब्रह्माजी से कहा कि 'भगवन् ! तीनों लोकों में हम लोग परम ज्ञानी माने जाते हैं और कार्य-कारण सभी तत्वों को हम जानते भी हैं परन्तु स्वभाव-भेद के कारण हम सबकी स्थितियाँ तरह-तरह की हैं। हममें से कोई सदा समाधि में मग्न रहता है, कोई विचार - विमर्श में लगा रहता है, कोई कर्म-निष्ठ हो जाता है परन्तु इन सबमें श्रेष्ठ कौन है, यह बतलाने की कृपा करें क्योंकि हम लोग तो अपने-अपने पक्ष को ही श्रेष्ठ मानते हैं।

ब्रह्माजी ने सोचा कि इन मुनियों में मेरे प्रति ठीक-ठीक श्रद्धा

नहीं है, इसलिये उन्होंने कहा कि 'भगवान् महेश्वर ही सर्वज्ञ हैं। वे ही इस विषय में बता सकते हैं।'

इस पर ब्रह्माजी को लेकर सभी भगवान् शिव के पास गये। वहीं भगवान् विष्णु भी पधारे और उन सबने मुनियों द्वारा पूछे गये प्रश्न को शिव के सामने रखा। भगवान् शिव भी ब्रह्माजी का आशय समझ गये कि यदि मैं कुछ कहूँगा तो व्यर्थ ही होगा क्योंकि ऋषि लोग मेरे पक्ष की बात नहीं मानेंगे। अतः भगवान् शिव ने सलाह दी कि 'हम सब मिलकर परमेश्वरी भगवती विद्या देवी का ध्यान करें, तो उन भगवती की कृपा से हम सभी अत्यन्त गूढ़ रहस्य को जान सकेंगे।'

महादेवजी के ऐसा कहने पर त्रि-देवों ने मुनि-गणों सहित त्रिपुरसुन्दरी देवी की स्तुति की। फलतः चित्-स्वरूपिणी त्रिपुरा देवी, जो चिदाकाश-मयी और शब्द-स्वरूपा हैं, प्रगट हो गईं। आकाश में उनका मेघ-गम्भीर स्वर गूंज उठा। ऋषियों द्वारा उठाई गई समस्या का निदान अपने मधुर वचनों द्वारा उन्होंने इस प्रकार किया—

'यह सम्पूर्ण जगत् दर्पण में प्रति-बिम्ब की तरह सभी को सर्वदा उत्पन्न, स्थित और लीन हुआ प्रतीत होता है। जो अज्ञानियों को जगत्-रूप ही दिखाई देता है परन्तु योगियों को निर्विकल्प जान पड़ता है तथा अपने स्वरूप में जो गम्भीर शान्त समुद्र के समान निश्चल रूप से स्फुरित हो रहा है। श्रेष्ठ भक्त-गण जिस अद्वय आत्मस्थ पद को जानकर अपने चित्त की प्रवृत्ति के कारण उपास्य-उपासक रूप-भेद की कल्पना करके अत्यन्त तत्पर होकर निश्छल भाव से परम प्रेम-पूर्वक उसका

सेवन करते हैं। इन्द्रिय और अन्तःकरणादिक, प्राण-रूप ग्रन्तः-सूत्र जिसके स्फुरित न होने पर कुछ भी नहीं रहता तथा जो केवल शास्त्रों द्वारा ही लक्षित होता है, वह परम प्रकाश ही मुझ त्रिपुरा-देवी का परम स्वरूप है।

ब्रह्माण्डों के बाहर बहुत दूर जो अमृत-समुद्र है, जिसमें एक मणि-द्वीप है, उसके कदम्ब-वन में एक चिन्ता-मणियों का बना एक सुन्दर मनोहर मन्दिर है। उसमें पञ्च-ब्रह्मात्मक सिंहासन पर जो अनादि मिथुनात्मक त्रिपुर-सुन्दर रूप है, वही मेरा ग्रमर स्वरूप है। सदा-शिव, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, गणेश, स्कन्द, इन्द्रादि और महा-लक्ष्मी आदि शक्तियाँ, वसु आदि गण, राक्षस, देवता, नाग, यक्ष, किन्नरादि मेरे ही अपर स्वरूप हैं। इन सब रूपों में मैं हो हूँ किन्तु मेरी माया से मोहित पुरुष मुझे नहीं पहचानते। इन सबमें पूजित होकर मैं ही अभीष्ट फल प्रदान करती हूँ।

मुझसे भिन्न न कोई शक्ति पूजित होनेवाला है और न कोई फल देनेवालो है। मैं अद्वय और चिन्मयी हूँ। अन्य किसी की भी अपेक्षा न रखकर जगत् - रूप से भास रही हूँ। इस प्रकार भासने पर भी मैं अपने अद्वितीय चिन्मय-स्वरूप का त्याग नहीं करती। यही ग्रसम्भव को सम्भव कर देनेवाला मेरा मुख्य ऐश्वर्य है। मैं किसी प्रकार की साधन-सामग्री के बिना ही संसार रच लेती हूँ। मेरी ऐश्वर्य-परम्परा अनेक प्रकार की है, जिसे सहस्र-मुख वाले शेषनाग भी नहीं गिन सकते। मैं परमोत्कृष्ट श्रीविद्या हूँ। मेरी आराधना किये बिना कोई परा-विद्या को कैसे प्राप्त कर सकता है ? मेरा ऐश्वर्य असीम है। यदि मेरे ऐश्वर्य को आप लोग तनिक सूक्ष्म दृष्टि से देखें, तो मैं ही सबको आधार ग्रौर सबमें ग्रनुगत होकर भी केवल चिन्मात्र ही हूँ।

अपनी माया से अपने ही को न जानकर मैं चिरकाल से जन्म-मरण-रूप संसार-चक्र में पड़ी हुई हूँ। फिर गुरुदेव का शिष्यत्व स्वीकार कर, आत्म-ज्ञान प्राप्त करके मैं नित्य-मुक्त होकर पुनः-पुनः मुक्त होती हूँ।

मेरे ऐश्वर्य के लेश-मात्र से सब और यह अद्भुत जगत्-व्यवहार फैला हुआ है। जो अत्यन्त सिद्ध और मुक्त पुरुष को भी अपने स्वरूप में ही देखता है, वह सर्वात्मा सिद्धों में श्रेष्ठ माना गया है। जो सम्पूर्ण बन्धनों को भी सर्वदा स्पष्टतया अपने आत्म-स्वरूप में ही भासमान देखने के कारण कभी मोक्ष की भी इच्छा नहीं करता है, वह सिद्धों में श्रेष्ठ माना गया है। हे ऋषियों, वह श्रेष्ठ सिद्ध मैं ही हूँ। मेरा और उसका कभी कोई अन्तर नहीं है। अतः हे ऋषियों ! अब आपको किसी प्रकार का सन्देह या मोह नहीं होना चाहिये।'

इस प्रकार कहकर पराम्बिका मौन होकर अन्तर्ध्यान हो गईं। उनका उपदेश सुनकर ऋषियों का सन्देह दूर हो गया।

श्रीत्रिपुरा महोपनिषत्

ॐ वाङ् मे मनसि प्रतिष्ठिता, मनो मे वाचि प्रतिष्ठितमाविरावीर्म एधि वेदस्य म आणीस्थः, श्रुतं मे म प्रहासीरनेनाहोऽधीतेनाहोरात्रान्त्संदधामि । ऋतं वदिष्यामि । सत्यं वदिष्यामि । तन्मामवतु । तद्-वक्तारमवतु । अवतु माम् । अवतु वक्तारम् ॥

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

[वाणी मेरे मन में प्रतिष्ठित है । मेरा मन वाणी में प्रतिष्ठित है । वेद का तत्व इन दोनों में स्थित है । मैंने श्रुति का जो अध्ययन किया है, उसे मैं अहर्निश मनन करता हूँ । मैं ऋत बोलूंगा, सत्य बोलूंगा । वह मेरी रक्षा करे, वह वक्ता की रक्षा करे ।]

भास्कर-भूमिका*—देवता के तीन प्रकार के रूप होते हैं—१ स्थूल, २ सूक्ष्म और ३ पर । इनमें से स्थूल-रूप का तो उस देवता के निर्दिष्ट ध्यान में स्पष्ट वर्णन रहता है और सूक्ष्म-रूप उसके मूल-मन्त्र में निहित होता है तथा तीसरा पर-रूप उपासनात्मक है । देवता के इन तीन रूपों के अनुसार उसकी साधना

---

* अपने भाष्य के प्रारम्भ में भास्कर राय ने जो भूमिका लिखी है, उसी का सारांश यहाँ दिया जा रहा है । इसी प्रकार भास्कर-व्याख्या, जो आगे हिन्दी ग्रंथ के उपरान्त दी गई है, वह उन्हीं के भाष्य का संक्षेप मात्र है ।

के भी तीन प्रकार निर्दिष्ट किये गये हैं—१ बहिर्याग, २ जप और ३ अन्तर्याग। इन्हीं सबका वर्णन इस महोपनिषत् में किया गया है। पहले मुख्य देवता का निर्देश करने के उद्देश्य से निम्न-लिखित प्रथम ऋचा कही गई है—

ॐ तिस्रः पुरस्त्रि-पथा विश्व-चर्षणी।
अत्राकथा अक्षराः सन्निविष्टाः॥
अधिष्ठायैनामजरा पुराणी।
महत्तरा महिमा देवतानाम्॥ १

तीन पुरों की जो अधीश्वरी है, जिसके तीन पन्थ हैं (मुक्ति ५ प्रकार की मानी गई है—१ सालोक्य, २ सामीप्य, ३ सारूप्य, ४ सायुज्य और ५ कैवल्य। इनमें से सालोक्य का एक मार्ग है और कैवल्य का एक। शेष तीन—सामीप्य, सारूप्य और सायुज्य का एक मार्ग है। इस प्रकार कुल मिलाकर ३ मार्ग हुए। सालोक्य का मार्ग है अपने आश्रमोक्त कर्मों का ऊर्ध्व-रेता रहते हुए अनुष्ठान; मध्यम तीनों का मार्ग है प्रतीकोपासना, स्व-स्वाभिमान से उपासना तथा अहं - ग्रहोपासना; कैवल्य का मार्ग है ब्रह्म - ज्ञान अथवा निर्गुणोपासना), विश्व जिसकी प्रजा है, जो अकारादि १६, ककारादि १६ तथा थकारादि १६ अक्षर-रूपों में सन्निविष्ट है (यहाँ 'अ' से आरम्भ करके 'अः' तक १६ रूप हुए, फिर 'क' से आरम्भ करके 'त' तक १६ रूप हुए, फिर 'थ' से आरम्भ करके 'स' तक १६ रूप हुए। 'अकथा' शब्द का यही अभिप्राय है। 'ह'-कार को इस गणना में इसलिये छोड़ दिया जाता है क्योंकि वह विमर्श-स्वरूप है। शेष वर्ण संयुक्ताकार होने से उनकी

स्वतन्त्र सत्ता नहीं है)। जो जरा-रहित है, जो जन्म-रहित है, इसी (त्रि-विन्दु-रूप त्रिपुरा) का देवताओं की महत्तरा महिमा अधिष्ठान करती है, अर्थात् ब्रह्मादि देवताओं की महिमा का अधिष्ठान यही त्रिपुरा है ।। १

भास्कर-व्याख्या—विष्णु-पुराण के तृतीय अंश में उक्त तीन मार्ग इस प्रकार कहे गए हैं—

उत्तरं यदगस्त्यस्य अजवीथ्याश्च दक्षिणम् ।
पितृ-याणः स वै पन्था वैश्वानर-पथाद् बहिः ।।

इस श्लोक से लेकर—

विवेक-ज्ञान-दृष्टश्च तद्विष्णोः परमं पदम् ।

यहाँ तक। त्रि-विध मार्ग होने से गन्तव्य पुरियाँ भी तीन हुईं। इस प्रकार की तीन पुरियों की प्राप्ति अभीष्ट होने से पर-देवता को 'त्रिपुरा' कहा गया है।

आत्म-बुद्ध्या प्रतीकेन, मातृ-बुद्ध्याऽप्यहं-धिया ।
कर्मणाऽपि भजन्मर्त्यः कैवल्यं पदमश्नुते ।।

इस प्रकार पञ्च-विध आत्मा त्रि-विध भजन के द्वारा ही त्रैपुर को प्राप्त करती है। अतएव वही 'त्रिपुरा' तीन पुर है। अर्थात् तीन मार्ग हैं जिसके, वह—त्रिपुरा।

'विश्व-चर्षणी' अर्थात् समस्त प्राणियों की वह उत्पादिका है। प्रसिद्ध श्रुति 'तदैक्षत वहु स्यां प्रजायेयेति' से भी सिद्ध है कि पर-ब्रह्म की प्राथमिक दृष्टि ही सारे विश्व की उत्पादिका थी, वह उसकी इच्छा व कृति-रूप थी। 'सोऽकामयत, तपोऽकुरुत' आदि श्रुतियों से भी यही प्रतिपादित होता है। 'स्वाभाविकी ज्ञान-बल-क्रिया च' इस श्रुति के अनुसार भी ब्रह्म से अभिन्न वह एक प्राथमिक वृत्ति ज्ञान - इच्छा-कृति - रूपा सिद्ध

होती है। वही वृत्ति इच्छा-ज्ञान - क्रिया के समष्टि-रूप से शान्ता, पश्यन्ती-मध्यमा-वैखरी के समष्टि-रूप से परा और वामा-ज्येष्ठा-रौद्री के समष्टि रूप से अम्बिका कही जाती है। वह शान्तात्मिका देवता ही श्री-चक्रस्थ विन्दु-चक्र है। नित्या हृदय में कहा भी है——

प्रसृतं विश्व-लहरी-स्थानं मातृ - त्रयात्मकम्।
बैन्दवं चक्रम्॥

इत्यादि। और वही त्रिपुर आदि 'तीन' के विशेषण से निर्दिष्ट किया गया है। बहु-वाचक विशेषण से सम्पन्न एक-वाचक विशेष्य से अनेकता में एकता के दर्शन की पुष्टि होती है। त्रि-रूपात्मकता में वस्तुतः एक - रूपत्व ही निहित है। कालिका-पुराण में भी कहा है——

त्रिकोण-मण्डलं चास्या भू-पुरश्च त्रि-रेखकम्।
मन्त्रोऽपि त्र्यक्षरः प्रोक्तस्तथा रूप-त्रयं पुनः॥
त्रि-विधा कुण्डली-शक्तिस्त्रि-देवानां च सृष्टये।
सर्वं त्रयं त्रयं यस्मात्तस्मात्तु त्रिपुरा मता॥

mohit of 3.

जिस प्रकार अर्थ-सृष्टि की वह विधायिका है, उसी प्रकार शब्द-सृष्टि की करनेवाली भी वही है। 'अत्राकथा अक्षरा सन्निविष्टा' से यही बात समझाई गई है। 'हकारार्णः कला-रूपो विमर्शाख्यः प्रकीर्तितः' के अनुसार 'ह' विमश-रूप होने के कारण, 'क्ष' क-ष के संयोग से बना होने के कारण और 'ळ' ल से अभिन्न होने के कारण—इन तोनों व्यंजनों की अलग से गणना नहीं की जाती। इसी से मातृकाओं की सख्या केवल ४८ ही बताई गई है। सूत-संहिता में भो लिखा है——

स्वर और व्यञ्जन के भेद से वह द्वि-विधा कहो गई है। स्वर के सोलह रूप हैं और व्यञ्जन के बत्तीस।

एकधा च द्विधा चैव तथा षोडशधा स्थिता।
द्वा-त्रिंशद्-भेद-सम्भिन्ना या तां वन्दे परां कलाम्॥

इस प्रकार इस ऋचा के पूर्वार्द्ध में विन्दु-चक्र के स्वरूप का उपदेश किया गया। उत्तराधं में उसकी अधिष्ठात्री उपास्य देवता का वर्णन हुआ है। उसे ब्रह्म-विष्णु-शिव आदि देवताओं की अपेक्षा उत्कृष्ट बताया गया है क्योंकि इन्हीं की उपासना से उक्त अन्य देवता महिमा-शालो हुए हैं। पद्म-पुराण में उल्लिखित अनेक उदाहरणों से स्पष्ट हो जाता है कि वह अखिल देवों की पूजनीया है। लिखा है—

शम्भुः पूजयते देवीं मन्त्र-शक्ति-मयीं शुभाम्।

एक भिक्षुक को दूसरे भिक्षुक से भीख माँगना उचित नहीं है, इस न्याय से अन्य देवताओं की उपासना की अपेक्षा पर-देवता की उपासना करना ही अधिक श्रेष्ठ है। 'अजरा' आदि विशेषणों से यह तात्पर्य है कि ब्रह्म-चक्राधिष्ठात्रो देवता पर-ब्रह्म ही है। कहा भी है—

अष्टा-चक्रा नव-द्वारा देवानां पूरयोध्या।
तस्यां हिरण्मयः कोशः स्वर्गो लोको ज्योतिषावृतः॥
तस्मिन् हिरण्मये कोशे त्र्यस्रे त्रि-प्रतिष्ठिते।
तस्मिन् तदक्षमात्म-वत् तद्वै ब्रह्म-विदो विदुः॥

भूपुर से लेकर त्रिकोण तक के चक्राष्टक के ऊपर जो विन्दु-कोश अपने त्रि-तयात्मक रूप को अन्तर्भुक्त किये हुए विराजमान है, उसमें महद्-भूत अक्ष है। उसका बहिःपूजा सम्भव न

होने से 'अक्ष' पद से उसका निर्देश हुआ है। उसका अनुभव केवल ब्रह्म-विद् लोग ही अपनी आत्मा में कर पाते हैं।

विन्दु-चक्र का वर्णन कर त्रिकोण और वसु-कोण इन दो चक्रों के समष्टि-रूप नव-योन्यात्मक चक्र का उपदेश करने हेतु अब द्वितीय ऋचा कही जाती है—

नव - योनीर्नव - चक्राणि दीधिरे।
नवैव योगा नव - योगिन्यश्च ॥
नवानां चक्रे अधि - नाथाः स्योना।
नव - मुद्रा नव - भद्रा महीनाम् ॥ २

वह नौ योनियों को, नौ चक्रों को, नौ योगों को, नौ योगिनियों को प्रकाशित करती है। वह 'स्योना' (सुख-हेतु) नौ चक्र-भूमियों, नौ मुद्राओं और नौ भद्राओं की अधीश्वरी है ॥२

भास्कर-व्याख्या—एक होकर भी विन्दु - चक्र त्रि-स्वरूपात्मक है, जिससे प्रत्येक के तीन रूप हैं। शान्तात्व के अवच्छेद से इच्छा-शक्ति, ज्ञान-शक्ति और क्रिया - शक्ति—इन तीन देवताओं की धारणा है। अम्बिकात्व के अवच्छेद से ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र इन तीन रूपों और वामा, ज्येष्ठा, रौद्री इन तीन शक्तियों की उत्पत्ति होती है। परा-तत्व के अवच्छेद से पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी—इस वाग्देवता को उत्पन्न किया। अथवा उस पर-देवता ने ही इस त्रिपुरा का अधिष्ठान कर नव-योनियाँ प्रकट कीं। ये नौ देवता ही नौ योनि-चक्रों में परिणत हुई हैं।

दो शक्ति-त्रिकोण और एक वह्नि-त्रिकोण के संयोग से नव-योनि-चक्र की निष्पत्ति होती है। प्रति त्रिकोण में तीन रेखाएँ हैं, इस प्रकार नौ रेखाओं के योग से नौ ही कोण भी बनते हैं। इससे नौ योगिनियों को धारणा। अर्थात् नव-चक्रों की स्थिति से तत्सम्बन्धी अप्रकटादि नव-योगिनियाँ भी कोण-रूप से यहाँ विद्यमान हैं।

देश-कालावच्छिन्नं तदूर्ध्वं परमं महः।

इस सिद्धान्त से व्यवहार, देश आदि से अवच्छिन्न विन्दु-चक्रादि प्रपञ्च ब्रह्म के अधोऽधः हैं, यह ज्ञात होता है। श्रीचक्र का मेरु-प्रस्तार भी इसी का पोषक है। इसी से एक ही चक्र में भू-पुर से लेकर विन्दु-पर्यन्त एक के ऊपर एक क्रमशः नव-भूमिकाएँ हैं और उनकी अधिष्ठात्री त्रिपुरा, चक्रेश्वरी आदि नाम की नौ ही शक्तियाँ भी हैं। वे भी नौ योनियों में ही सूक्ष्म-रूप से क्रम-पूर्वक विद्यमान रहती हैं। संक्षोभिणी आदि नौ मुद्राएँ भी यहीं स्थित हैं। नौ भद्रों को तन्त्र में निम्न प्रकार से गणना की गई है—

धर्माधर्मौ तथात्मानो मातृ-मेये तथा प्रमा।

१ पुण्य, २ पाप, ३ आत्मा, ४ अन्तरात्मा, ५ परमात्मा, ६ ज्ञानात्मा, ७ प्रमाता, ८ प्रमेय और ९ प्रमा—ये नौ भद्र हैं।

'भद्रा' पद से 'मन्त्रा' का भी ग्रहण किया जा सकता है। इससे कुछ लोग नव-चक्रेश्वरी के मन्त्रों का भाव निकालते हैं। किन्तु सान्निध्य का भाव होने से इसका तात्पर्य मुद्रा-मन्त्र लेना युक्त होगा। विन्दु-त्रिकोण-वसु-कोणात्मक तीन चक्रों के रूप-वाले संहार-चक्र में ही सम्पूर्ण श्रीचक्र सूक्ष्म-रूप से स्थित है, यह सारांश हुआ। आपत्काल के लिए निर्दिष्ट संक्षिप्त पूजा-

विधियों में वसु - कोण से लेकर विन्दु-पर्यन्त मातृ-पूजा का जो विधान मिलता है, उसका मूल यही श्रुति है।

अब दशार-द्वय-मन्वस्र-रूप स्थिति-चक्र का उपदेश करने के लिए तृतीय ऋचा को कहते हैं—

एका सा आसीत् प्रथमा सा।
नवासीदासोन - विंशदासोन-त्रिशत् ।।
चत्वारिंशदथ तिस्रः समिधा ।
उशतीरिव मातरो माऽऽविशन्तु ।। ३

वह सब संसार की कारण-भूता एक ही थी। फिर विन्दु-चक्र-रूप नवा-योन्यात्मक थी। फिर १९ प्रकार की (नव-योनियों और बहिर्दशार के मेल से) हुई। फिर इन सबको मिलाकर उन्तीस प्रकार की हुई। फिर वही देवी ४३ प्रकार की हुई। वह कामना करती हुई माता की भाँति मेरे शरीर में प्रवेश करे।।३

भास्कर-व्याख्या—उक्त नौ योनियों से पाँच सूक्ष्म-भूत और पाँच स्थूल-भूत—कुल दस भूत उद्भूत हुए। इनके स्थूल-सूक्ष्म-भेद से शब्दादि दस तन्मात्राएँ हुईं। इनमें से पाँच कर्मेन्द्रियाँ पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और चार अन्तःकरण—ये चौदह हुए। ये सभी देवता स्त्री-रूपात्मक होने के कारण योनि-स्वरूप हैं। इन सबका तन्त्र में निम्न प्रकार उल्लेख हुआ है—

भूत-तन्मात्र-दशक-प्रकाशालम्बनत्वतः ।
द्वि-दशार-स्फुरद्रूपम्...

इसी प्रक्रिया का उपदेश उक्त ऋचा में किया गया है। समिधा अर्थात् देदीप्यमाना माता शरीर में प्रवेश करे, इसका

भाव यह है कि जैसे गाएँ अपने बछड़ों के समीप शीघ्राति-शीघ्र पहुँचने के लिए वन से वेग-पूर्वक आकर गो-शाला में प्रविष्ट होती हैं; उसी प्रकार ये भी शरोर में प्रविष्ट हों। यही श्रुति तन्त्रोक्त चक्र-न्यास-विधि की मूल है। तात्पर्य कि इन चक्र-देवताओं का अपने शरीर में न्यास करना होता है। लिखा है—

योगिन्यो यास्तु ताः सर्वा गेहं कुर्वन्तु मे वपुः।
इति शक्ति-न्यास-मन्त्र-लिङ्ग-संवादात्तस्यापि मूलम् ॥

अव सृष्टि-चक्र शेष रहा। अतः वृत्त-त्रय-विशिष्ट पद्म-द्वय का उपदेश करने के लिये चतुर्थ ऋचा को कहते हैं—

ऊर्ध्वं - ज्वलज्ज्वलन - ज्योतिरग्रे ।
तमो वै तिरश्चीनमजरं तद्-रजोऽभूत् ॥
आनन्दनं मोदनं ज्योतिरिन्दो–
रेता उ वै मण्डला मण्डयन्ति ॥ ४

पहले स्थिति-चक्रोत्तर चक्रों में तमो-गुणात्मक अग्नि नामक ज्योतिर्मण्डल हुआ। ('ऊर्ध्व-ज्वलत्' विशेषण उसके अग्नि के ज्वाला - रूप को स्पष्ट करने के लिए दिया गया है।) उसके पश्चात् तिर्य्यक् रूप से फैलनेवाला ज्योतिर्मण्डल सूर्य (रक्त-वर्ण होने के कारण) रजो-गुण-प्रधान हुआ। वह अजर था। उसके पश्चात् वै :यिक सुखोत्पादक चन्द्र ज्यातिर्मण्डल हुआ। ये तोनों मण्डल (अग्नि-मण्डल, सूर्य-मण्डल और चन्द्रमण्डल) माता को विभूषित करते हैं, अर्थात् उसकी शाभा बढ़ाते हैं ।।४

भास्कर-व्याख्या—चतुर्दशार के अधोऽधः अष्ट-दल और षोडश-दलात्मक दो चक्र वर्तमान हैं तथा ऊर्ध्व-भाग में दो कर्णिका-वृत्त और एक बाह्य-वृत्त इस प्रकार तीन वृत्त हैं। ऐसा कुछ आचार्यों का सिद्धान्त है, जिससे—

ज्येष्ठा-रूपं चतुष्कोणं वामा-रूपं भ्रमि-त्रयं ।

इस वाक्य के 'भ्रमि-त्रय' पद की प्राचीन आचार्यों की व्याख्या वृत्त-त्रय के अन्तराल-द्वय-वर्ती पद्म-द्वय की लक्षणा से युक्ति-सङ्गत सिद्ध होती है।

..................वृत्त - त्रितय - संयुतम् ।
सरोरुह-द्वयं शाक्तैरग्नीषोमात्मकं प्रिये ।।

इस वचन में भी यही व्याख्या है। उक्त वृत्त अग्नि-सूर्य-सोम-रूप गुण-त्रयात्मक है, ऐसा जो प्रस्तुत ऋचा में कहा गया है, उससे अन्तराल में स्थित पद्म-द्वयों का वर्णन समझना चाहिए।

जलती हुई अग्नि के ऊर्ध्व भाग में कज्जल का दर्शन होता है, जिससे उसका तमो-गुणात्मक रूप सिद्ध होता है। सूर्य रजो-गुणात्मक है और चन्द्र सत्व-गुणात्मक है। 'आनन्द'-पद सत्व-गुण का ही वोधक है क्योंकि सत्व के आधिक्य से ब्रह्मानन्द की व्यञ्जना होती है।

इस वर्णन का भाव यह है कि वृत्त-त्रय के अन्तराल में विद्यमान पद्म-द्वय-विशिष्ट श्रीचक्र ही काय-क्षम है, केवल मन्वस्र नहीं। मन्वस्र से लेकर विन्दु तक की पूजा का जो निर्देश है, वह मात्र आपत्-काल के लिए।

अब भू-गृहात्मक नवें चक्र का उपदेश करने के लिए पञ्चम ऋचा कही जाती है—

तिस्रश्च रेखाः सदनानि भूमे—
स्त्रि-विष्टपास्त्रि-गुणास्त्रि-प्रकाशाः ।।
एतत् पुरं पूरकं पूरकाणा—
मत्र प्रथेते मदनो मदन्या ।। ५

भूमि के सदन की तीन रेखाएँ हैं। वे ही त्रिभुवन-रूपा है।) वे त्रिगुण - रूपा हैं। अग्नि, सूर्य, चन्द्र—इन तीन वृत्तों के प्रकाश से प्रकाशित हैं। यह स-परिवार पर-देवता का निवास-स्थान चक्र भक्तों के मनोरथों का पूरक है। यह शिव, विष्णु आदि के मनोरथों का भी पूरक है। इस श्रीचक्र में कामेश्वर शिव (मदनः) और शिव-काम-सुन्दरी (मदन्या) अपनी किरण-रूपी अणिमादि - द्वारा अनादि - रूप का विस्तार करती हुई विलास कर रही हैं (प्रथेते)॥५

भास्कर-व्याख्या—कर्णिका के दो वृत्तों के अतिरिक्त पद्म-द्वय के बाहर तीन वृत्त निर्दिष्ट हुए हैं। ऋचा में उल्लिखित 'तिस्रश्च रेखा' पद इसी का बोधक है। यदि ऐसा अर्थ न लिया जाय, तो कर्णिका-द्वय के ही अवशेष रहने से मण्डल-त्रय का कथन असङ्गत हो जायगा। 'तन्त्र-राज' में मन्वस्र के बाहर अष्ट-दल-कर्णिका-वृत्त के अतिरिक्त मर्यादा-वृत्त का जो कथन हुआ है, उसका आधार यही श्रुति है।

विविध क्षेत्रों में नाम-भेद से जो देवी-रूप पुराणों और तन्त्रों में उल्लिखित पाये जाते हैं, वे सब इसी भगवती त्रिपुरा के ही रूप हैं, इस तथ्य का उपदेश करने के लिये अब छठी ऋचा को कहते हैं—

मदन्तिका मानिनी मङ्गला च।
सुभगा च सा सुन्दरी शुद्ध - मत्ता॥
लज्जा मतिस्तुष्टिरिष्टा च पुष्टा।
लक्ष्मीरुमा ललिता लालपन्ती॥६

वह देवी पृथक्-पृथक् क्षेत्रों में मदन्तिका, मानिनी, मङ्गला, सुभगा, सुन्दरी, शुद्ध-मत्ता, लज्जा, मति, तुष्टि, इष्टा, पुष्टा, लक्ष्मी, उमा, ललिता और लालपन्ती नामों से अभिहित है। (पद्म-पुराण में देवी-तीर्थों की गणना करते हुए क्षेत्र-विशेष के आधार पर, देवी के कुछ नाम गिनाये हैं। यथा—प्रयाग में ललिता देवी, लङ्का में मङ्गला, त्रिकूट में भद्र-सुन्दरी, करवीर-देश में महा-लक्ष्मी, विनायक देश में देवी, देव-दास वन में पुष्टि, काश्मीर में मेधा, वत्सेश्वर में तुष्टि इत्यादि) ।।६

भास्कर-व्याख्या—मदन्तिका आदि चतुर्दश देवियाँ वाराणसी में विराजमान विशालाक्षी आदि की बोधिका हैं। 'लालपन्ती' पद से लालप्यमाना से तात्पर्य है। अथवा पञ्च-दश अक्षरों की ये पन्द्रह देवता हैं। 'शुद्ध-मत्ता' का अथर्वण पाठ 'सिद्धि-मत्ता' है।

इस प्रकार वर्णित देवता की उपासना के विधान का निर्देश करने के लिये अब सातवीं ऋचा को कहते हैं—

इमां विज्ञाय सुधया मदन्ति ।
परिस्रुता तर्पयन्तः स्व - पीठम् ।।
नाकस्य पृष्ठे महतो वसन्ति ।
परं धाम त्रैपुरं चाविशन्ति ।। ७

पूर्वोक्त पर-देवता को विधि विशेष-पूर्वक जानकर, दीक्षादि-पूर्वक उपासना स्वीकार करके, अपने शरीर से अभिन्न श्रीचक्र में पीयूषी-कृत परिस्रुत द्रव से तृप्त करते हुए जो भक्त इन्द्रियों के विषयों को निर्विकल्प रूप से भोगते हैं, वे महदाकाश पृष्ठ पर स्थित त्रिपुरा के धाम में निवास करते हैं ।।७

भास्कर-व्याख्या—इस श्रुति में अमृतीकरण संस्कार का वर्णन हुआ है। उसकी अधिष्ठात्री देवता सुधा-देवी है, यह संवित्-सस्कार के मन्त्र-वर्णों से ज्ञात होती है (रुद्र-यामल)—

मन्त्र-संस्कार-संशुद्धं तदेवामृतमुच्यते।

'महा-नाक - पृष्ठ - वास' से यह बोध होता है कि इससे विविध पुरुषार्थ-फल प्राप्त होते हैं। अर्थात् भगवती त्रिपुरा के उपासकों की सभी कामनाओं की पूर्ति होती है और अन्त में वे मोक्ष को प्राप्त करते हैं। 'देवी-भागवत' में कहा भी है—

एवं सर्व-गता शक्तिः सा ब्रह्मेति विविच्यते।
सगुणा निर्गुणा चेति द्वि-विधोक्ता मनीषिभिः॥
सगुणा रागिभिः पूज्या निर्गुणा तु विरागिभिः।
धर्मार्थ-काम-मोक्षाणां स्वामिनी सा निराकुला॥
ददाति वाञ्छितानर्थानर्चिता विधि-पूर्वकम्॥

श्रीविद्या की दीक्षा-प्राप्त साधकों को द्रव्य-युक्त अपने पीठार्चन से निर्विकल्प वृत्ति के द्वारा सभी कामनाओं की भावना करनी चाहिये। 'इमां विज्ञाय' पद से यह बोध होता है कि विद्वत्ता से ही इसमें अधिकार प्राप्त होता है। अतएव 'समयाचार स्मृति' में कहा है—

कुल दीक्षा - विहीनानां नाधिकारो द्वि-जन्मनाम्।

यहाँ 'तर्पयन्तः' से बहिर्याग-विधि का निर्देश कर आगे १२ वीं ऋचा में प्रयुक्त 'निवेदयन्, स्वात्मीकृत्य' पदों से देवता-निवेदन और स्वात्मीकरण की जो सम-कालीनता दिखाई है, उससे दिव्य-पान-विधि से ही उक्त श्रुति का तात्पर्य बोध होता है, वीर-पान-विधि से नहीं। इससे—

पानं तु त्रिविधं प्रोक्तं दिव्य-वीर-पशु-क्रमैः।
दिव्यं देव्यग्रतः पानं वीरमुद्रासने कृतम्॥

इस स्मृति का मूल अन्य श्रुति में ढूँढ़ना होगा।

इस प्रकार पर-रूपोपास्ति का निर्देश कर सूक्ष्म रूप की उपासना-विधि को दर्शाने के लिए आठवीं ऋचा कहते हैं—

कामो योनिः कमला वज्र-पाणि—
गुंहा हसा मातरिश्वाऽभ्रमिन्द्रः ॥
पुनर्गुहा सकला मायया च।
पुरूच्येषा विश्व-माताऽऽदि - विद्या ॥ ८

'कएईलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं'—यही प्राचीन जगज्जननी-स्वरूपा आदि विद्या है।

(इस ऋचा से तान्त्रिक कोषानुसार गायत्री मन्त्र भी निकलता है। भास्कर राय ने 'वरिवस्या-रहस्य' में इसका उद्घाटन किया है।

भास्कर-व्याख्या—इस ऋचा में पञ्च-दशाक्षरी मन्त्र का उद्धार निहित है। यह मन्त्र स्त्री-देवतात्मक होने के कारण यहाँ 'विद्या' नाम से कहा गया है। इस मन्त्र का प्रत्येक अक्षर और तद्-वाचक पद कतिपय महत्व-पूर्ण निर्देशों के व्यञ्जक हैं। साथ ही उनसे तत्सम्बन्धी कर्मों का भी बोध होता है। अथवा यह ऋचा आदि-विद्या गायत्री की उद्धारिका है, जैसा कि 'त्रिपुरा-तापिनी' में स्पष्ट किया गया है। भागवत का प्रथम श्लोक भी इसी प्रकार की बात कहता है। यथा—

सर्व-चैतन्य-रूपां तामाद्यां विद्यां च धीमहि।
बुद्धि या नः प्रचोदयात् ॥

'मातरिश्वा' और 'काम' चतुर्मुख - वाचक अक्षर (क) के, 'कमला' और 'योनि' ११वें स्वर (ए) के, 'इन्द्र' और 'वज्र-पाणि'

तृतीय अन्तःस्थ अक्षर (ल) के, 'गुहा' और 'माया' भुवनेश्वरी-बीज (ह्रीं)के तथा 'अभ्र' उक्त मन्त्र के आदि अक्षर हकार का एवं शेष पञ्चक (हसा, सकला) उसके स्वरूप के बोधक हैं। यह आदि-विद्या 'पुरूचो' अर्थात् पुरातनी 'विश्व-माता' अर्थात् जगत् की जनयित्री हैं। 'योगिनी-हृदय' के सम्प्रदायार्थ-प्रकरण में मन्त्राक्षरों से जगदुत्पत्ति का वर्णन विस्तार के साथ किया गया है। इस मन्त्र का अर्थ दत्तात्रेय, अगस्त्य आदि के द्वारा विविध तन्त्रों में किया गया है। उसी का संग्रह 'वरिवस्या-रहस्य' में हुआ है।

इस प्रकार काम-राजोपासिता विद्या का उपदेश करने के बाद अब लोपामुद्रोपासिता विद्या का उपदेश करने के उद्देश्य से नवीं ऋचा को कहते हैं—

> षष्ठं सप्तममथ वह्नि-सारथिमस्या।
> मूल - त्रिकमावेशयन्तः ॥
> कथ्यं कविं कल्पकं काममीशं।
> तुष्टुवांसो अमृतत्वं भजन्ते ॥ ९

इस विद्या के प्रथम तीन अक्षर निकाल कर उनके स्थान पर छठा (ह), सातवाँ (स) और 'वह्नि - सारथि' (क) रख-कर जप करनेवाले मोक्ष के भागी होते हैं। वह पर-शिव कामना करनेवाला (काम), विश्व-कल्पना का अधिष्ठान (कल्पक), वेद-प्रणेता (कवि) और वेदों-द्वारा ज्ञातव्य (कथ्य) है ॥९

भास्कर-व्याख्या—पर - देवता के तीन प्रकार के ध्यान विहित हैं। कुलार्णव में लिखा भी है—

> पुं-रूपां वा स्मरेद् देवीं स्त्री-रूपां वा विचिन्तये।
> अथवा निष्कलं ध्यायेत् सच्चिदानन्द-लक्षणम् ॥

यद्यपि परोपासना में निष्कल का जप करना चाहिए और बहिर्याग में पुं-रूप या स्त्री-रूप का ध्यान करना चाहिए, ऐसी व्यवस्था है। तथापि स्त्री-पुं-रूप की सम-प्रधानता कही गई है। अतएव सम्प्रदायानुसार ऐच्छिक विकल्प निर्दिष्ट है। मनु-चन्द्रादि द्वारा उपासित तथा अन्य विद्याओं के 'त्रिपुरा-तापिनी' में जो उद्धार दिखाये हैं, उनमें भी प्रकृति के इन्हीं दोनों रूपों की प्रधानता है। इसी से 'ज्ञानार्णव' में बारह प्रकार की विद्याओं का उद्धार कर कहा है—

विद्या द्वयमिदं भद्रे देवानामपि दुर्लभम्।

इन दोनों में से कादि-विद्या का उद्धार पहले हुआ है, अतएव इसका प्राधान्य प्रतीत होता है। 'ब्रह्माण्ड - पुराण' में कहा भी है—

श्रीविद्यैव तु मन्त्राणां तन्त्रे कादिर्यथा परा।

वस्तुतः सभी विद्याओं में अभेद होने से तार-तम्य की उक्ति केवल प्रशंसा मात्र है। अतएव श्रीमदाचार्य भगवत्-पाद ने 'सौन्दर्य-लहरी' में इनका उद्धार विपरीत-क्रम से दिखाया है। यहाँ अन्तर्याग का प्रकरण होने से उसके अङ्ग-भूत जप का उल्लेख हुआ है।

वास्तव में तीनों उपासनाएँ समान रूप से महत्व रखती हैं। कहा भी है—

अन्तर्याग-बहिर्यागौ गृहस्थः सर्वदाऽऽचरेत्।
चक्र-राजार्चनं विद्या-जपो नाम्नां च कीर्तनम्॥
भक्तस्य कृत्यमेतावदन्यदभ्युदयं विदुः॥

केवल अन्तर्याग और जप को जो फल-दायक कहा गया है, वह अधिकारी-विशेष के लिए। अब स्थूलापास्ति की विधि का

निर्देश किया जाता है। मूल देवता के सगुण-रूप का चिन्तन कर बहिश्चक्र में उसकी स्थापना के लिए उसके स्थूल-विशेष रूप का उपदेश करने के लिए दसवीं ऋचा कही जाती है—

त्रि-विष्टपं त्रि - मुखं विश्व-मातु—
र्नव - रेखाः स्वर - मध्यं तदीले ।।
बृहत्-तिथीर्दश - पञ्चादि - नित्या ।
सा षोडशी पुर - मध्यं विभर्त्ति ।।१०

नव रेखाओं वाले संहार-चक्र में 'अः' स्वर का स्थान मध्य में है। इस त्रि-मुख चक्र को त्रिपुर - सुन्दरी का निवास-स्थान समझ कर मैं उसकी स्तुति करता हूँ। वह त्रिपुर-सुन्दरी पन्द्रह तिथियों के पति (सूर्य) की भाँति श्री-चक्र के मध्य में विसर्ग-स्वर के स्थान पर आसीन है ।।१०

भास्कर-व्याख्या—'त्रि-मुखं' अर्थात् त्रिकोण से मध्य त्रिकोण से तात्पर्य है। विश्व-माता भगवती त्रिपुर-सुन्दरी की पूजा त्रिकोण में की जाती है। यह त्रिकोण कामेश्वरी आदि पन्द्रह नित्या-देवताओं से परिवेष्ठित है, जिनकी पूजा पाँच-पाँच के क्रम से क्रमशः त्रिकोण की तीनों रेखाओं पर की जाती है। 'ज्ञानार्णव' में लिखा भी है—

विभाव्य च महत् त्र्यस्रमग्र-दक्षोत्तर-क्रमात् ।
रेखासु विलिखेत् पश्चात् पञ्च पञ्च क्रमेण ह ।।
अकाराद्यानुकारान्तान् दक्षिणायां विचिन्तयेत् ।
ततश्च पूर्व-रेखायां दीर्घ-कर्णादि-पञ्चकम् ।।
विलिख्योत्तर-रेखायां शक्त्यादि विलिखेत्ततः ।
अनुस्वारान्तं मध्ये च विसर्गे षोडशीं यजेत् ।।

चन्द्रमा की वृद्धि-क्षय - शालिनी कलाएँ पन्द्रह हैं। ये ही तिथियाँ हैं, जो तन्त्र-शास्त्र में 'दर्शाद्याः पूर्णिमान्ताश्च कलाः पञ्च-दशैव तु' इत्यादि से और 'दर्शा दृष्टा दर्शता' (तै० ब्रा० ३, १०, १) इत्यादि से तैत्तिरीय में निर्दिष्ट हैं। इनकी कारण-स्वरूपा, वृद्धि और क्षय से शून्य, सदाख्या षोडशी कला है और वह पन्द्रह नित्याओं की कारण होने से 'आदि-नित्या' कही जाती है। वही पूर्व-वर्णिता भगवती त्रिपुर-सुन्दरी है, जो आदित्य-स्वरूपा है और श्रीचक्र के मध्य-स्थान को विभूषित करती है।

प्रसङ्ग-वश अब काम-कला के ध्यान का, जो वहिर्यागाश्रित है, उपदेश करने के लिए ग्यारहवीं ऋचा को कहते हैं—

द्वा मण्डला द्वा स्तना बिम्बमेकं।
मुखं चाधस्त्रीणि गुहा सदनानि ॥
कामीं कलां काम्य-रूपां विदित्वा।
नरो जायते काम-रूपश्च काम्यः ॥ ११

दो मण्डल, दो स्तन, एक बिम्ब-मुख, तीन भू-गृह (गुहा-सदन अर्थात् भूपुर), कामेश्वरात्मक मन्मथ-कला-युक्त कमनीय-स्वरूपा का ध्यान करता हुआ मनुष्य काम-देव के समान सुन्दर हो जाता है ॥११

भास्कर-व्याख्या—कोष के अनुसार 'बिम्ब' पद भी मण्डल-वाचक है। अतएव इस उपनिषद् की चौथी ऋचा में वर्णित तीन मण्डलों का ही यह विभाग सिद्ध होता है। उस ऋचा में भी वह्नि और सूर्य-मण्डल ही स्तन बताए गए हैं। पाठ-क्रम से, जैसा कि यहाँ 'अधः' पद से संकेत है, उनके अनन्तर

इन्दु-विम्ब का ही मुख होना स्पष्ट है और उसके बाद भूपुर हकारार्द्ध है।

काम-कला का रूप तन्त्रों में अनेक प्रकार से और क्लिष्ट-तया निर्दिष्ट हुआ है। तथापि भगवत्-पाद का यह निर्देश कि—

'मुखं विन्दुं कृत्वा कुच - युगमधस्तस्य तदधो हकारार्द्धं ध्यायेत्'

सर्वथा स्पष्ट है। 'बिम्ब-पद' यहाँ विन्दु-परक होता हुआ विन्द्वादि-मन्वस्रान्त-चक्र-गण-परक है।

'मण्डल-त्रय-रूपं तु चक्र-शक्त्यानलात्मकम्'—इस सुन्दरी-श्लोक में 'मण्डल'-पद दशारादि-चक्र का वाचक है। अतः 'द्वा-मण्डला' से अष्ट-दल और षोडश-दल इन दो चक्रों की योजना होती है। यहाँ तीन अवयवों का कथन हुआ है, जो समस्त अव-यव के उप-लक्षण हैं। वास्तव में शरीर के तीन ही अवयव होते हैं—(१) शीर्षादि से घण्टिका तक, (२) कण्ठादि से स्तनों तक और (३) हृदय से सीवन्त तक। केश, पाणि और चरण तो उन-उनकी शाखाएँ हैं। इस प्रकार सर्व-चक्र-स्वरूपा 'कामी' अर्थात् कामेश्वरात्मक मन्मथ-सम्बन्धिनी 'कला' अर्थात् चित्-कला को 'काम्य-रूपा' अर्थात् कमनीय-स्वरूपा ध्यान कर उपा-सक 'काम-रूप' अर्थात् मन्मथ के समान सुन्दर हो जाता है। यही नहीं, 'काम्य' अर्थात् तीनों भुवनों के समस्त प्राणियों के द्वारा अभिलषित रूप को प्राप्त करता है। भगवत्-पाद ने इस सम्बन्ध में कहा है—

ध्यायेद् यो हर-महिषि ! ते मन्मथ - कलाम् ।
स सद्यः संक्षोभं नयति वनिता इत्यति-लघु ।
त्रिलोकीमप्याशु भ्रमयति रवीन्दु-स्तन-युगाम् ॥

'काम-रूपत्व' और 'काम्यत्व' के पाने के अभिलाषी व्यक्ति-यों को काम-कला का ध्यान करना चाहिये, ऐसा विधान है। यहाँ, विधेय ध्यान ही क्रिया-रूप है अर्थात् ध्यान - मात्र से ही फल की सिद्धि हो जाती है, किसी अन्य बहिर्यजन आदि साधना की आवश्यकता नहीं होती। जिस प्रकार श्येन यज्ञ आदि में सौमिक अङ्ग-भूत है, उसी प्रकार इसमें भी बहिर्याग अङ्ग-भूत तो है तथापि अभाव होने पर बहिर्याग के अतिरिक्त भी अनु-ष्ठान करने से फल की प्राप्ति होती है, ऐसा भगवत्-पाद का आशय है।

'नित्या-षोडशिकार्णव' में लिखा है—

बिन्दुं सङ्कल्प्य वक्त्रं तु तदधःस्थं कुच-द्वयम्।
तदधः सपरार्द्धं तु चिन्तयेत् तदधो - मुखम्॥

यज्ञ-प्रकरण में निर्दिष्ट विधि के अनुसार इस ध्यान का यज्ञात्मक पक्ष भी स्मरण होता है। उस दशा में अन्नादि कामना की पूर्ति करनेवाले यज्ञों के समान फल के चाहनेवाले इसका भी बहिः प्रयोग कर सकते हैं। अतएव भक्ति-सूत्र में भगवत्-स्मरण का निर्देश कर कहा है—

बहिरन्तस्तमुभयमवेष्टि-वत् सर्वमिति।

अब बहिर्याग के द्रव्यों का प्रतिपादन करने के लिए बारहवीं ऋचा कहते हैं—

परिस्रुतं झषमाद्यं पलं च।
भक्तानि योनीः सु-परिष्कृतानि॥
निवेदयन् देवतायै महत्यै।
स्वात्मीकृत्य सुकृती सिद्धिमेति॥१२

मद्य, मांस, मत्स्य और ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि विविध जातियों की दृष्टादृष्ट संस्कारों द्वारा परिष्कृत योनियाँ महादेवी की सेवा में निवेदित करके और उसके बाद स्वयं भी सेवन करके भक्त सिद्धि को प्राप्त कर लेता है ।।१२

भास्कर-व्याख्या—'झशः' अर्थात् मत्स्य से पहले मद्य, तब द्वितीय स्थानोक्त 'पल' अर्थात् मांस । इस प्रकार मत्स्य तीसरे क्रम पर ग्रहण होता है । तब 'भक्तानि' अर्थात् वटक, चणक आदि नाना प्रकार के अन्न पदार्थ । तदनन्तर चतुर्थ स्थान पर कहा हुआ 'योनि-पद' जो कुण्ड-गोलोद्भव को उप-लक्षित करता है, पञ्चम क्रम पर आता है । इस प्रकार पञ्च-मकारों का क्रम निर्दिष्ट हुआ है । इनके स्थूल रूप में न मिलने पर इनके प्रतिनिधियों (अनुकल्पों) से पूजन करने का नियम है । तदनुसार म-पंचक के अभाव में भी 'नित्य-क्रमं प्रत्यवममृष्टिः' इस 'कल्प-सूत्र' से यह बोध होता है कि पूर्व-पूर्व तत्वों का अभाव होने पर उत्तरोत्तर तत्व के सुलभ होने पर भी उन मुख्य तत्वों का ग्रहण नहीं करना चाहिए । तथापि प्रथम-मात्र के अभाव में भी चतुर्थ की नैवेद्य के लिए आवश्यकता होने के कारण सम्प्रदाय में केवल उसके ग्रहण किये जाने का क्रम पाया जाता है ।

पर-देवता के तर्पण भर के लिए यदि पर्याप्त मात्रा में मुख्य तत्व सुलभ हो, तो अनुकल्प से यजन न करे । 'सु-परिष्कृतानि' अर्थात् लौकिक पाकादि-रूप से और वैदिक शाप-मोचनादि रूप से संस्कृत । 'सुकृती' अर्थात् बहिर्याग का करनेवाला साधक उन्हें 'स्वामीकृत्य' अर्थात् स्वयं भी खाकर सिद्धि को प्राप्त करता है । सारांश यह है कि प्रथम आदि म-पञ्चक के परस्पर समुच्चय से युक्त याग के द्वारा इष्ट की सिद्धि होती है ।

अब देवता के सगुण-ध्यान को याग के अङ्ग-रूप में उपदिष्ट करने के लिए तेरहवीं ऋचा कहते हैं—

सृण्येव सितया विश्व - चर्षणिः ।
पाशेन प्रति - बध्नात्यभीकान् ॥
इषुभिः पञ्चभिर्धनुषा च विध्य—
त्यादि - शक्तिररुणा विश्व-जन्या ॥१३

जो 'अभीक' हैं अर्थात् इस मार्ग में लोभ-बुद्धि से अथवा भोग-बुद्धि से प्रवेश करते हैं, उनको प्राणि-मात्र का शुभाशुभ जाननेवाली वह विश्व-जननी आदि-शक्ति तीक्ष्ण श्वेत पाश से बाँध कर धनुष और पाँच बाणों से बेधती है ॥१३

भास्कर-व्याख्या—भावार्थ यह है कि तृष्णा-हीन साधकों को, जो वैध बुद्धि से साधना-रत रहते हैं, जगज्जननी महा-त्रिपुर-सुन्दरी उन्नति-शील करती हैं। कहा भी है—

विधि-बुद्ध्यैव सेवेत तृष्णया चेत् स पातकी ।
यैरेव पतनं द्रव्यैर्मुक्तिस्तैरेव चोदिता ॥
अभीकस्यानभीकस्येत्येवमेते व्यवस्थिता ।

इत्यादि। यास्क के अनुसार 'सृणि' दो प्रकार की होती है—१ भर्ता, २ हन्ता। 'इव' शब्द सर्वत्र अन्वित होकर सगुण-रूप की भक्तों के प्रति अनुग्रह-शीलता और निर्गुण-रूप की पारमार्थिकता व्यञ्जित करता है।

सगुण के कल्पित होने से ही स्त्री-पुं-रूप की सम-प्रधानता का उपदेश करने के लिए चौदहवीं ऋचा कहते हैं—

भगः शक्तिर्भगवान् काम ईशः ।
उभा दाताराविह सौभगानाम् ।।
सम-प्रधानौ सम-सत्त्वौ समोजौ ।
तयोः शक्तिरजरा विश्व - योनिः ।। १४

ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान और विज्ञान--इन छहों गुणों के आधार कामेश्वर तथा देवी शक्ति दोनों इस लोक में धर्मार्थ-काम-रूपी विविध फलों के देने वाले हैं; अर्थात् उस देवी की उपासना चाहे स्त्री-रूप में की जाय या पुरुष-रूप में की जाय, दोनों का फल एक जैसा होता है। दोनों—कामेश्वर और कामेश्वरी—समान-रूप से प्रधान हैं, क्योंकि कामेश्वरी का ध्यान करने में वह शिव के अङ्क में आश्रित होने के कारण उसका आधार शिव प्रधान हुए और शक्ति-हीन स्वयं कुछ करने में असमर्थ होने से शक्ति प्रधान हुई। दोनों समान सामर्थ्यवाले हैं। फिर भी इन दोनों समानों में शक्ति जरा-रहित है और संसार को उत्पन्न करनेवाली है, अतः वह प्रधान हुई ।।१४

भास्कर-व्याख्या—'भग' शब्द ईश का पर्याय-वाची है। लिखा है—

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः ।
ज्ञान-विज्ञानयोश्चैव षण्णां भग इतीरणा ।।

इत्यादि। स्मृतियों में ईश्वर के शरीर पर घटित होनेवाली जितनी धर्म-राशि कथित हुई है, वह सभी यहाँ 'भग' पद से

निर्दिष्ट हुई है। उस प्रकार का धर्म-समूह ही शक्ति कहा जाता है। उपास्य के रूप में वर्णित स्त्री-रूपा देवता का यही स्वरूप है। पुं-स्वरूप शिव और स्त्री-स्वरूप शक्ति में अभिमत फल के देने की सामर्थ्य और अन्योन्य गुण-प्रधान भावों की समानता होते हुये भी जगत् के कर्तृत्व की दृष्टि से शक्ति प्रधान ठहरती है। इससे यह ध्वनित होता है कि स्त्री-रूप का ध्यान करने से इष्ट-फल की सिद्धि शीघ्र मिलती है। भागवत में कहा है—

> शक्तिः करोति ब्रह्माण्डं सा वै पालयतेऽखिलम्।
> इच्छया संहरत्येषा जगदेतच्चराचरम्॥
> न विष्णुर्न हरो नेन्द्रो न ब्रह्मा न च पावकः।
> नार्को न वरुणः शक्ताः स्वे-स्वे कार्ये कथञ्चन॥
> तया युक्ता हि कुर्वन्ति स्वानि कार्याणि ते सुराः।
> कारणं सर्व - कार्येषु प्रत्यक्षेणावगम्यते॥

अन्यत्र भी लिखा है—

> शिवोऽपि शवतां याति कुण्डलिन्या विवर्जितः।
> शक्ति-हीनोऽपि यः कश्चिदसमर्थः स्मृतो बुधैः॥

इससे प्रकट है कि शिव में क्षमता तो है किन्तु फल-दातृत्व आदि-शक्ति के अधीन होने से विलम्ब से फल प्रदान करते हैं; जबकि शक्ति किसी अन्य की अपेक्षा न रखने के कारण अति शीघ्र कामना को सिद्ध करती है। अतः स्त्री-रूपा देवता का ही ध्यान करना उचित है।

इस प्रकार सगुण-ध्यान के सम्बन्ध में कहकर निर्गुण-ध्यान के सम्बन्ध में कुछ कथनीय न होने के कारण उससे होनेवाले फल और उसे उत्पन्न करने की विधि का उपदेश करने के लिए पन्द्रहवीं ऋचा कहते हैं—

परिप्लुता हविषा भावितेन ।
प्र - संकोचे गलिते वै मनस्कः ॥
सर्वः सर्वस्य जगतो विधाता ।
धर्ता हर्ता विश्व - रूपत्वमेति ॥ १५

मन्त्र-संस्कार द्वारा संस्कृत, हवि और मद्य के सेवन द्वारा मन से संकोच के दूर हो जाने पर वह उपासक विश्व-रूपत्व को प्राप्त हो जाता है। वही विधाता (ब्रह्मा), धर्त्ता (विष्णु) और हर्त्ता (शिव)—सब कुछ हो जाता है ॥१५

भास्कर-व्याख्या—कर्म-मार्ग, ज्ञान-मार्ग और भक्ति-मार्ग में उस-उस मार्ग के शास्त्र-कारों ने नाना प्रकार की परस्पर विलक्षण साधन-प्रणालियाँ बताई हैं। वे सभी दुस्साध्य हैं और चिर-काल के बाद फल देनेवाली हैं, ऐसा उक्त शास्त्रों के ज्ञाताओं को विदित ही है। यहाँ अर्थात् इस उपासना में द्रव्य-स्वीकार के द्वारा आवर्तमान उल्लास - परम्परा हो साधना-प्रणाली है। इसमें प्रौढ़ोल्लास-पर्यन्त समयाचार-कृत धर्म हैं। तदनन्तर यथा-कामी और चरमोल्लास में ब्रह्म-स्वरूपता संन्निविष्ट है। 'कल्प-सूत्र' में भी कहा है—

'आरम्भ-तरुण-यौवन - प्रौढ़ - तदन्तोन्मन्यनवस्थोल्लासेषु प्रौढान्तं समयाचारः, ततः परं यथा-कामीति।'

उल्लास-सप्तक के लक्षण कुलार्णव आदि में देखे जा सकते हैं।

यद्यपि मन के विलीन हो जाने से ब्रह्म-स्वरूपता की प्राप्ति होती है, तथापि अविद्या के फल-स्वरूप विशेष-रूप की निद्रा से संवलित हो जाने के कारण वह पुरुषार्थ नहीं है। निद्रा-राहित्य

के साथ ही वैसी दशा पुरुषार्थं है, जिसे ज्ञान-भूमिकाओं में ज्ञानी लोग सातवीं भूमिका मानते हैं और जिसे निर्विकल्पक-सम्बन्ध से योगी लोग व्यवहार से अनुभव करते हैं। इसी दशा को योगि-जन उन्मन्युत्तर अनवस्था-रूपोल्लास में भी अनुभव करते हैं। कहा भी है—

आनन्दं ब्रह्मणो रूपं तच्च देहे व्यवस्थितम्।
तस्याभि-व्यञ्जकं द्रव्यं योगिभिस्तेन पीयते॥

'कल्प-सूत्र' में भी कहा है कि उसके अभि-व्यञ्जक पञ्च-मकार हैं। परन्तु उसी द्रव्य को यज्ञाङ्ग के रूप में न ग्रहण कर यदि अपवित्र रूप में पिया जाता है, तो पुरुषार्थ-निषेध की प्रवृत्ति जाग्रत होती है और पाप से अनु-विद्ध होने के कारण उस दशा को उत्पन्न करने में वह समर्थ नहीं होता। मन्त्रों के द्वारा पवित्र किया हुआ हवि-रूप ही समाधि-दशा को उत्पादित करता है 'समयाचार-स्मृति' में कहा है—

असंस्कृतं पशोः पानं कलहोद्वेग-पाप-कृत्।
मन्त्र-पूजा-विहीनं यत् पशु-पानं तदेव हि॥
पशु-पान-विधौ पीत्वा वीरोऽपि नरकं व्रजेत्।
संस्कृतं बोध-जनकं प्रायश्चित्तं च शुद्धि-कृत्॥
मन्त्राणां स्फुरणं तेन महा-पातक-नाशनम्।
आयुः श्रीः कान्ति सौभाग्यं ज्ञानं संस्कृत-पानतः॥
अष्टैश्वर्यं खेचरत्वं पतनं विधि-वर्जितम्।
सौत्रामण्यां कुलाचारे मदिरां ब्राह्मणः पिबेत्॥
अन्यत्र ब्राह्मणः पीत्वा प्रायश्चित्तं समाचरेत्।

इत्यादि । परन्तु--

परं प्राणः प्रगच्छन्तु ब्राह्मणो नार्पयेत् सुराम् ।
ब्राह्मणो मदिरां दत्वा ब्राह्मण्यादेव हीयते ॥

इत्यादि 'शक्ति-सङ्गम, तन्त्र-राज' आदि के वचनों से निषेध होने के कारण इस धर्म-पाश के निरसन का उपाय सत्-सम्प्रदाय से ही जानना चाहिए ।

व्यवस्था और प्रकार 'कौलोपनिषद्' के भाष्य में मैंने स्पष्ट किए हैं। अस्तु । अधिकारी व्यक्ति उस प्रकार के उल्लासों के द्वारा अन्तःकरण के अवच्छिन्न हो जाने पर जीवात्मा की अन्तः-करण-उपाधि से उत्पन्न होनेवाले संकोच से रहित हो जाता है। संकोच-रहित होकर ब्रह्म-भाव में स्थित होने पर फिर शेष ही क्या रहा ! यहाँ यह ध्यान रखना चाहिए कि द्रव्यो-ल्लास की प्राप्ति होने में ही कृतार्थता नहीं है। इसे इसकी तुलना योग की समाधि से करके समझा जा सकता है। जिस प्रकार प्राणायाम आदि उपायों के द्वारा बार-बार समाधि-प्रवेश के निरन्तर अभ्यास से कुछ दिनों के बाद बिना प्राणायाम किए ही सार्व-कालिक समाधि उत्पन्न हो जाती है, अथवा जिस प्रकार नौका में चढ़कर समुद्र-यात्रा करने पर उसकी लहरों से बहुत देर तक आन्दोलित रहनेवाला व्यक्ति नौका से उतरने के बाद भी यह अनुभव करता है कि उसे चक्कर-से आ रहे हैं, उसी प्रकार संस्कृत द्रव्य-पान से उत्पन्न उन्मनी अवस्था के अभ्यास से कुछ दिनों में बिना द्रव्य-पान किए ही उस तरह की दशा की सिद्धि हो जाती है ।

स्वात्मैक-विषयक निर्विकल्प-वृत्ति को उत्पन्न करनेवाला मद ही है। इसी आशय से तन्त्र में मत्त व्यक्ति की बहु-विधता निम्न प्रकार प्रतिपादित की गई है—

रमन्ते कामुका मत्ता मत्तः कुप्यति कोपनः।
गायन्ति गायका मत्ता मत्ता ध्यायन्ति कोपनः॥

अतएव विशेष योगी-जन भी इसकी सहायता लेते हैं। यह सर्वात्मकता की भावना को विकसित करता है।

इस प्रकार त्रैपुर सिद्धान्त का कथन कर उप-संहार में इस उपनिषद् के अध्ययन मात्र का माहात्म्य वर्णन करने के लिये सोलहवीं ऋचा को कहते हैं—

इयं महोपनिषत् त्रिपुरायाः।
यामक्षयं परमे गीर्भिरीट्टे॥
एषर्ग् - यजुः परमेतच्च सामे—
वायमथर्वेयमन्या च विद्या ॐ॥ १६

॥ ॐ ह्रीं ॐ ह्रीमिति त्रिपुरोपनिषत्॥

यह महोपनिषत् उस त्रिपुरा का है, जिसकी स्तुति अखण्ड ब्रह्म भी अकार, उकार, मकार द्वारा किया करता है। यह उपनिषद् ऋग्वेद, यजुर्वेद, साम-वेद, अथर्व-वेद तथा अष्टादश विद्याओं का सार-भूत है॥ १६

भास्कर-व्याख्या—'कल्प-सूत्र'-कार भगवान् श्रीपरशुराम ने लिखा है—

य इमां दशम - खण्डी महोपनिषदं महा - त्रैपुर - सिद्धान्त-सर्वस्व-भूतामधीते सर्वेषु यज्ञेषु यष्टा भवति, यं यं क्रतुमधीते तेन तेनास्य क्रतुनेष्टं भवतीति हि श्रूयते इत्युप - निषदिति 'शिवम्' ।

इससे इस उपनिषद् में अकथित और अपेक्षित अर्थ 'कल्प-सूत्र' से ग्राह्य हैं ।

यह उपनिषद् सर्व-स्वरूप है । प्रणव-स्वरूपा भी है । इससे यतियों के भी अध्ययन करने के योग्य है । इसमें उपनिषद् की महिमा ऐसी है कि श्रुति भी उसका कथन करने में असमर्थ है । अर्थात् ब्रह्म से इसकी एक-रूपता है और ब्रह्म अनिर्वचनीय है ।

श्रीत्रिपुरा - महोपनिषदं भाषानुवाद व्याख्या-सहितं च समाप्तम् ।।
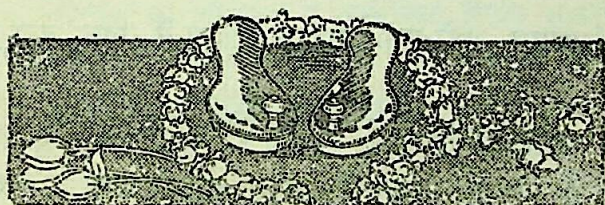
श्री श्री यन्त्र
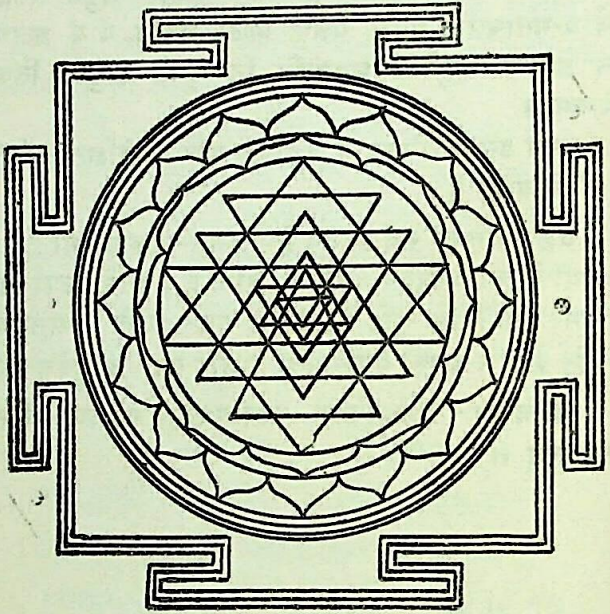
[मध्यस्थ अधो-मुख त्रिकोण के मध्य में 'विन्दु' बना लें]

विन्दु—त्रिकोण—वसु-कोण—दशार-युग्मम् ।
मन्वश्र—नाग-दल—संयुत—षोडशारम् ॥
वृत्त - त्रयं च धरणी सदन - त्रयं च ।
श्रीचक्र - राजमुदितं पर - देवतायाः ॥

रहस्य

देवता के साक्षात्कार के लिए, उससे सम्पर्क बनाने के लिए प्रारम्भ में किसी-न-किसी आधार को ग्रहण करना आवश्यक होता है। अपने इष्ट-देवता के ध्यानानुरूप 'प्रतिमा', 'चित्र' और 'पूजा-यन्त्र' ही निर्दिष्ट आधार हैं।

ऋषियों द्वारा विविध देवताओं के पूजा-यन्त्रों के अलग-अलग स्वरूप निर्दिष्ट किए गए हैं। उनमें से भगवती श्रीविद्या के पूजा-यन्त्र की विशेष ख्याति है। यह पूजा-यन्त्र 'श्री-यन्त्र', या 'श्री-चक्र' के नामों से प्रसिद्ध है। इसमें सभी देवताओं का पूजन किया जा सकता है। इसी से इसे 'यन्त्र-राज' या 'चक्र-राज' भी कहते हैं।

'श्री-चक्र' या 'श्री-यन्त्र' से सम्बन्धित विशेष ज्ञातव्य बातें उक्त पुस्तक में विस्तार से सरल हिन्दी भाषा में वर्णित हैं।

पुस्तक में विवेचित मुख्य विषय क्रम से इस प्रकार हैं—१ श्री-चक्र के अङ्गों का संक्षिप्त वर्णन, २ श्री-चक्र का साधन-क्रम, ३ श्री-चक्र और दश-महा-विद्यायें, ४ श्री-चक्र में भगवती दुर्गा, ५ श्री-चक्र का लेखन - विधान, ६ श्री-चक्र का लेखन या उत्कीर्णन, ७ श्री-चक्र का अवतरण (विश्व-सृष्टि का रहस्य)

मूल्य १५-०० रु०।

मुमुक्षु मार्ग
(रहस्योद्घाटन)

मूल्य १०-०० रु०

इस पुस्तक में गुप्तावतार बाबा श्री के प्रवचनों के आधार पर ॐ, राम, कृष्ण, गायत्री, नवार्ण, ह्रीं श्रीं क्रीं, मृत्युञ्जय मन्त्र, स्त्रीं बीज का अर्थ, श्री दुर्गा का ध्यान और यन्त्र, श्री और श्री-यन्त्र की महिमा, त्रि-कूट की भावना आदि ५१ रहस्य-मय विषयों पर सरल भाषा में प्रकाश डाला गया है। सभी तन्त्र-प्रेमी बन्धुओं के लिए यह पुस्तक संग्रहणीय है।

'वाम-मार्ग' किसी ऐसे ईश्वर का उपदेश नहीं करता, जो सुदूर स्वर्ग में बैठा हुआ समग्र ब्रह्माण्ड पर शासन करता हो।

'वाम - मार्ग' की दृष्टि में तो साधक-शरीर ही विश्व है, और उसमें जो आत्म-शक्ति स्थित है, वही उसकी आराध्य-देवता है।

साधना द्वारा साधक इसी आत्म-शक्ति का दर्शन करता है।

नवीन संस्करण : मूल्य १०) रु०
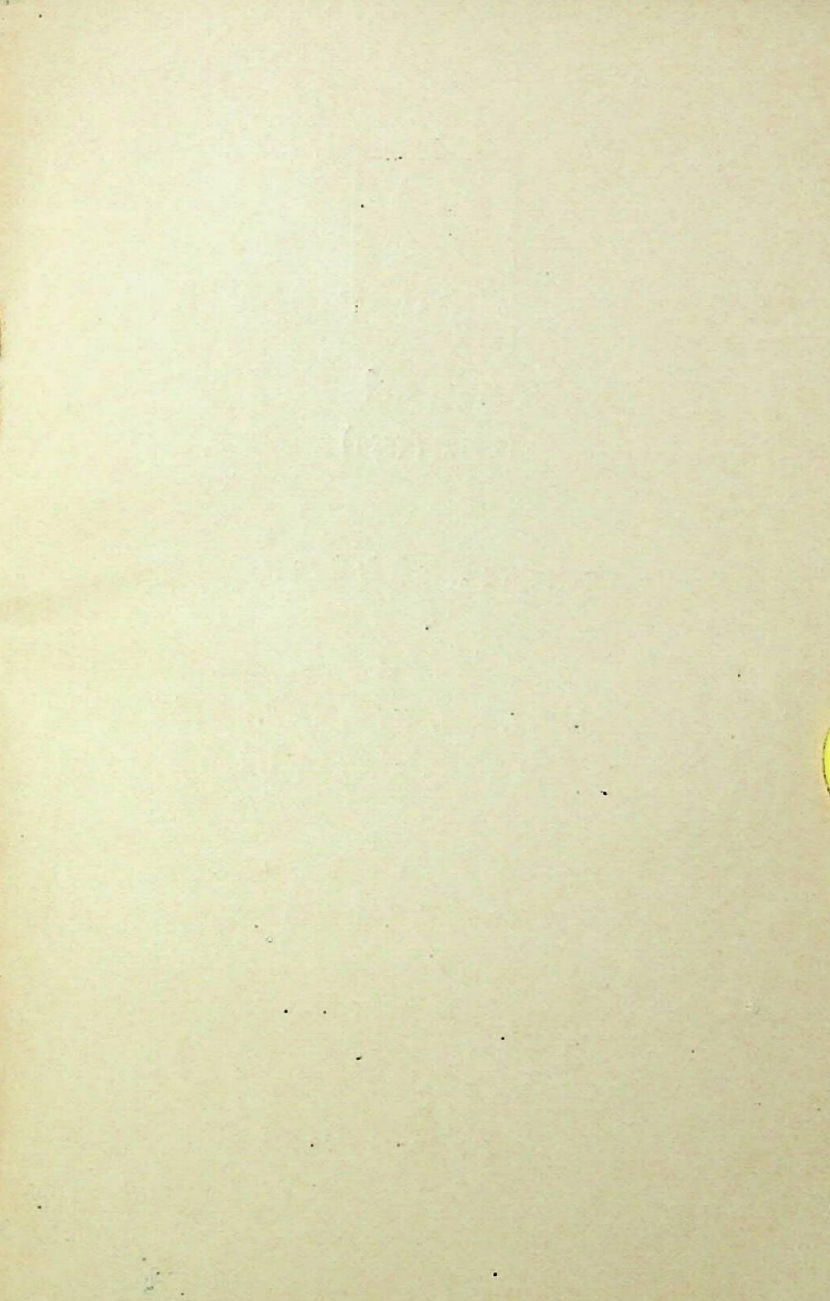
मुमुक्षु मार्ग

(रहस्योद्घाटन)

गुप्तावतार बाबाश्री के प्रवचनों
के
आधार पर
ॐ, राम, कृष्ण, गायत्री, नवार्ण,
मृत्युञ्जय आदि मन्त्रों का रहस्यार्थ
एवम्
कुण्डलिनी-रहस्य, योग-रहस्य,
पादुका-रहस्य, पूजा-रहस्य
आदि
महत्वपूर्ण विषयों का विवेचन

मूल्य : १०-०० रु०